श्री

धर्म्म नीति दर्पण

भाषानुवाद समेत

पण्डित जयदत्त शर्म्मा

संकलित

मुन्शीसदानन्द स[illegible] द्वारा

अलमोड़ा डिबेटिङ्ग क्लब यन्त्रालय में मुद्रित हुआ

सम्वत् १९५४ सन् १८९८ ईस्वी

मूल्य ।)

प्रथमबार १०००

पुस्तक मिलने का पता - मैनेजर डिबेटिङ्गक्लब यन्त्रालय अल्मोड़ा

भूमिका

मनुष्य का अपने मुख्य कर्तव्य कर्म को जानना तथा बालकों को आरम्भ से ही धर्म की ओर प्रवृत्त करना और सदाचरणमें अनुशासित करना, व निन्दित कर्मों के बुरे परिणाम दर्शाकर उनका चित्त उन से फेरना, प्राचीन समय से ही सभ्य जातियों के मध्य एक अति आवश्यक बात मानी गई है, क्यों कि जब बालकों के चित्त में धर्म के अंकुर आरम्भ से ही जम जाते हैं तो वे सयाने होकर भी सन्मार्ग को नहीं छोड़ते और समाज तथा सामयिक राज्य को अपने आचरण से हानि नहीं पहुचाते अतः हमारी उदार और दूर दर्शी गवर्नमेन्ट ने भी विद्यालयों में आर्य बालकों को उनके धर्म नीति में शिक्षा दियेजाने की अनुमति दे दिई है सन्देह नहीं है कि ऐसी शिक्षा से हमारे युवकों का मानसिक तथा सामाजिक उपकार होगा इस समय आर्य बालकों के पढ़ने के लिये धर्म नीति की पुस्तकें बहुत कम हैं इस अभाव को देखकर इस छोटी सी पुस्तक को संकलित करने का साहस मुझे भी हुआ है अतः मैने पुराण, इतिहास, स्मृति और नीति ग्रंथों के ग्रन्थों से ऐसे सदुपदेशों का संग्रह किया है जो स्वाभाविक सद्धर्म के नियमों के अनुकूल तथा सर्व जन सम्मत और सर्व साधारण के अनुसरण के उपयोगी हैं, आशा है, कि हिन्दू समाज के सभ्य जन इस छोटी सी पुस्तक को पठन पाठन की प्रणाली में स्थान देंगे, और जो कुछ त्रुटि इस में रहगई हो उस से मुझे सूचित करने से चिरबाधित करेंगे जिस से अब की बार के छपने में वह त्रुटि न रहने पावे, इस छोटीसी पुस्तक के संग्रह करने में मुझे निम्नलिखित महाशयों से बड़ी सहायता मिली है जिस को मैं धन्यवाद पूर्वक यहां पर स्वीकार करता हूं अर्थात् पण्डित लीलानन्द ज्योतिर्विद, पण्डित मथुरादत्त ज्योतिर्विद बी. ए. पण्डित नारायण दत्त ज्योतिर्विद एब डिपुटी इन्स्पेक्टर और पण्डित देवकीनन्दन ज्योतिर्विद, जिन्हों ने संस्कृत के अनुवाद तथा श्लोकों के शुद्ध करने में मुझे सहायता दिई है।

तारीख २७ जनवरी १८९८

जयदत्त ज्योतिर्विद्
पीनाखान, अल्मोड़ा

प्रथमोऽध्यायः ।

(विद्या)

विद्याधनं श्रेष्ठतरं तन्मूलमितरद्धनम् ।
दानेन वर्द्धतेनित्यं नभाराय न नीयते ॥१॥ (शु०)

विद्या सब धनों से श्रेष्ठ है और इतर धनोंकी मूल विद्या है देने से सदा बढ़ती है न भार होता है- न कोई उसे लेजासकता है ।

रूपयौवन संपन्ना विशाल कुलसम्भवाः ।
विद्याहीनान शोभन्ते निर्गन्धा इवकिंशुकाः ॥२॥ (हि०)

सुन्दरता और तरुणतासे युक्त श्रेष्टकुलमें जन्म पायेहुए विद्याहीन पुरुष गन्धहीन पलास के फूलों के समान शोभा नहीं पाते ।

दोहा । रूपभयो यौवन भयो कुलहू में अनुकूल
बिनविद्या के जानिये गन्धहीन ज्यों फूल ।

विद्या विलास मनसो धृतशील शिक्षाः
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः ।
संसार दुःख दलनेन सुभूषिता ये
धन्यानरा विहितकर्मपरोपकाराः ॥३॥ (बि०)

जिनका मन विद्याके विलासमें रहता है और जो सुन्दर शील और शिक्षा से युक्त हैं जो सत्यका पालन करते हैं और जो अभिमान और अपवित्रतासे रहित हैं और जो संसारी जनों के दुःखों का दूर करने से सुभूषित हैं और जो वेदानुसार कर्म करने से दूसरों का उपकार करते हैं वेजन धन्य हैं ।

विद्वान् प्रशस्यते सर्वै विद्वान् सर्वत्र गौरवम् ।
विद्यया लभते सर्वं विद्या सर्वत्र पूज्यते ॥४॥ (चा०)

विद्वान ही संसार में प्रशंसा पाता है विद्वान ही सब जगह श्रेष्ठता को प्राप्त होता है विद्या ही से सब वस्तुओं को पाता है विद्या ही सब जगह पूजी जाती है ।

विद्वानेव हि जानाति विद्वज्जनपरिश्रमम् ।
नहि बन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम् ॥५॥

विद्वान ही विद्वानों के परिश्रम को जानता है मूर्ख क्या जाने जैसे कि बांझ स्त्री पुत्र प्रसव के क्लेश को नहीं जानती।

ज्ञातिभिर्वंटनेनैव चौरेणापि न नीयते ।
दाने नैव क्षयंयाति विद्यारत्नं महाधनम् ॥६॥

कुटुम्ब के बीच में बांटने से भी क्षय को नहीं प्राप्त होती है और न चोर इस को लेसकता है और दान करनेसे भी कम नहीं होती बरन बढ़ती है इस कारण विद्यारूप रत्न श्रेष्ट धन है।

दोहा। चोर न चोरी करसके नहीं नृपतिके साथ
बन्धु भाग नहीं लेसके विद्याधन निर्बाध।

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धन माप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥७॥ (भ०)

विद्या विनय को देती है विनय से मनुष्य पात्र होजाता है पात्र होने से धन लाभ करता है धनसे धर्म और धर्म से सुख मिलता है।

दोहा। सुखचाहे विद्यापढ़े विद्याहै सुखहेतु ।
भवसागर के तरन को विद्याहै दृढ़सेतु ।

विद्यानाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्न गुप्तं धनम्
विद्याभोगकरी यशः सुखकरी विद्यागुरूणां गुरुः ।
विद्याबन्धुजनो विदेश गमने विद्यापरं दैवतम्
विद्याराजसुपूजिता नहि धनं विद्याविहीनः पशुः ॥८॥ (भ०)

विद्या ही मनुष्य का अधिक रूप और छिपाहुआ धन है विद्याही भोग यश और सुख की देने वाली है गुरुओं की गुरु है परदेश में विद्या ही मित्र है और विद्या ही परम देवता है और विद्या ही राजा लोगों में पूज्य है न कि धन, इसलिये विद्या हीन नर पशु हैं।

दोहा। विद्याउत्तम द्रव्य है विद्याधनद नि केत
परम मित्र विद्याभनी विद्या करत सुचेत
भाग हीन नर को परम आश्रय विद्याज्ञान
विद्या से संसार में गुरुपद लहैं सुजान

यथायथाहि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथातथा विजानाति विज्ञानंचास्य रोचते ॥९॥

जैसे जैसे मनुष्य शास्त्रों को यथावत् जानता जाता है वैसे वैसे उस विद्या का विज्ञान बढ़ता जाता है और उसी में उसकी रुचि भी बढ़ती जाती है ।

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवोन विषोक्षितैः ।
लालनाऽश्रयिणोदोषास्ताड़ना श्रयिणोगुणाः ॥१०॥

जो माता पिता और गुरु अपने सन्तान और शिष्यों का ताड़न करते हैं वे उन को अपने हाथ से अमृत पिलाते हैं और जो लाड़ करते हैं वे उन को विष पिला के नष्ट भ्रष्ट करदेते हैं ।

सर्व्वेषामेवदानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।
वार्य्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम् ॥११॥

संसार में जितने दान हैं अर्थात् अन्न, जल, गौ, पृथ्वी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण, और घृतादि इन सब दानों से वेद विद्या का दान अति श्रेष्ठ है इसलिये तन मन धन से जहांतक होसके अन्य दानों की अपेक्षा विद्या दान ही अधिक करना उचित है ।

विद्वत्वं चनृपत्वं च नैवतुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यतेराजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥१२॥

विद्वान् और राजा की कभी तुल्यता नहीं होसकती क्यों कि राजा अपने ही राज्य में मान और सत्कार पाता है परन्तु विद्वान् सर्वत्र मान और प्रतिष्ठा पाता है ।

माताशत्रुः पिताबैरी येनबालोन पाठितः ।

नशोभते सभामध्ये हंसमध्ये बकोयथा ॥१३॥ (चा०)

वे माता पिता अपने बालकों के पूर्ण बैरी हैं जो उन को विद्या प्राप्ति नहीं कराते हैं विद्वानों की सभा में वे शोभित नहीं होते हैं जैसे हंसों के बीच में बगुला।

मातृपितृ कृताभ्यासो गुणितामेति बालकः।
नगर्भच्युतिमात्रेण पुत्रोभवति पण्डितः ॥१४॥ (चा०)

बालक माता पिता के विद्याभ्यास कराने से गुणवान होता है गर्भ से निकलनेमात्र कोई पण्डित नहीं होसकता है।

किंकुलेन विशालेन विद्याहीनेन देहिनाम्।
दुष्कुलं चापिविदुषो देवैरपि सुपूज्यते ॥१५॥

जो पुरुष विद्यासे हीन हैं उनका उत्तम कुल में जन्म भी निष्फल है और विद्वान् नीच कुलवाला भी देवतों कर के पूज्य होता है।

कामधेनु गुणाविद्या ह्यकाले फलदायिनी।
प्रवासे मातृ सदृशी विद्यागुप्त धनंस्मृतम् ॥१६॥ (चा०)

विद्या में कामधेनु के समान गुण हैं अकालमें भी फलको देनेवाली है परदेश में माताके तुल्य हितकारिणी है इसलिये विद्याको गुप्तधन कहते हैं।

द्वितीयो ऽध्यायः

(धर्म)

प्रभवन् एच्छतेयोहि सम्मानयति वापुनः।
नूनंमन्ये स धर्म्मात्मा पण्डिताख्यां सगच्छति ॥१॥ (शु०)

अपने आप किसी बात में निपुण होकर भी जो दूसरे से सम्मत ले वा उसका सन्मान करे तो वह धर्म्मात्मा पण्डित कहलाता है।

नसीदन्नपिधर्मेण मनोऽधर्मेनिवेशयेत् ।

अधार्मिकाणां पापाना माशुपश्यन्विपर्ययम् ॥२॥ (म०)

धर्म करते करते यदि कष्ट को भी प्राप्त होजाय तब भी मनुष्य को उचित है कि अधर्म में मन न लगावे देखना चाहिये कि पाप कर्मों का परिणाम शीघ्र ही बुरा होता है ।

धर्म्मएव हतोहन्ति धर्म्मोरक्षतिरक्षित: ।

तस्माद्धर्म्मो नहन्तव्यो मानोधर्म्मो हतोऽवधीत् ॥३॥ म०

धर्मका नाशकरना क्याहै मानो अपने को मारना है और धर्म की रक्षा करना मानो अपनीरक्षा करना है इस कारण धर्म का नाश नहीं करना चाहिए ऐसानहो कि हमधर्म को नाश करे और वह हमारा भी नाशकरे ।

मंगलाचार युक्तानां नित्यंच प्रयतात्मनाम् ।

जपतांजुह्वतां चैव विनिपातोन विद्यते ॥४॥ म०

जो उत्तम आचार युक्त हैं और नित्य शुद्ध हैं और जप और होम में जो तत्पर हैं उन को दैव व मानुष उपद्रव नहीं होते हैं ।

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकाल मतन्द्रित: ।

तंह्यस्याहु: परंधर्म मुपधर्मोऽन्यउच्यते ॥५॥ म०

नित्य कर्म के समय आलस्य छोड़कर ओंकार युक्त गायत्री आदि वेदकोही सदा अभ्यासकरे क्यों कि मनु आदि ने वेद का अभ्यास ही ब्राह्मण का परमधर्म कहा है और वेदाभ्यास से अन्य उपधर्म कहलाता है ।

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।

संयमे यत्न मातिष्ठे द्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥६॥

जैसे सारथी घोड़ों को वश में रखता है वैसे ही विद्वान्को मन और आत्मा को खीचने वाले विषयो में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में सब प्रकार से प्रयत्न करना चाहिये ॥६॥

कामात्मता न प्रशस्ता नचैवेहास्त्य कामता ।
काम्योहि वेदाधिगमः कर्म योगश्च वैदिकः ॥७॥ म०

इस संसार में अत्यन्त अभिलाषा और अत्यंत निष्कामता किसी के लिये भी श्रेष्ठ नहीं है क्यों कि जो कामना न करे तो वेदों का ज्ञान और वेद विहित उत्तम कर्म किसी से भी न होसकें ।

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्य संशयम् ।
सन्नियम्यतु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥८॥ म०

जीवात्मा इन्द्रियों के वश में होके निश्चय बड़े बड़े दोषों को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को अपने वश करता है तभी सिद्धि को प्राप्त होता है ।

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।
तद्धिकुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमांगतिम् ॥९॥ म०

वेद में कहे हुये अपने वर्णाश्रम के उचित कर्म को नित्य आलस्य छोड़कर करे क्यों कि अपनी सामर्थ्य के अनुसार उस कर्म को करता हुआ मनुष्य परम गति को प्राप्त होता है ।

वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैवच ।
अद्रोहेणच भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥१०॥ म०

सदा वेद के अभ्यास, शौच (मन देह वाणी करके शुद्ध रहना), और तप (शीत उष्ण भूख प्यास हर्ष शोक को सह लेना), और भूतों के अद्रोह से (प्राणिमात्र को द्रोह भाव छोड़ने से) पूर्व जन्म का स्मरण मनुष्य को होजाता है ।

वर्जयेत् मधुमांसञ्च गन्धं माल्यं रसांस्त्रियः ।
शुक्तानियानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥११॥ म०

ब्रह्मचारी सुरा मांस गन्ध माला रसादि वस्तु स्त्री का संग सवप्रकार की खटाई जो पकके खट्टी होजाती है त्यागदे और किसी प्राणी की हिंसा न करे ।

योऽनधीत्य द्विजो वेद मन्यत्र कुरुते श्रमम् ।

सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥१२॥ म०

जो वेद को न पढ़के और प्रकार के परिश्रम किया करता है वह अपने वंश सहित इसी जन्म में शीघ्र ही शूद्र भाव को प्राप्त हो जाता है।

अर्थ कामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥१३॥

जो पुरुष सुवर्णादि रत्न और स्त्री सेवनादि में लिप्त नहीं हैं उन्हीं को धर्म और ज्ञान प्राप्त होते हैं जो धर्म के जानने की इच्छा करें वे वेद द्वारा धर्म का निश्चय करें क्योंकि धर्माऽधर्म का निश्चय बिना वेद के ठीक ठीक नहीं होता।

सत्ये रतानां सततं दांतानामूर्द्ध्वरेतसाम्।

ब्रह्मचर्य्यं दहेद्राजन् सर्वं पापान्युपासितम् ॥१४॥ (वि०)

जो सदा सत्याचार में प्रवृत्त हों जितेन्द्रिय हों और जिनका वीर्य्य अधः स्खलित कभी नहीं होराजन् ऐसे पुरुषोंका ब्रह्मचर्य्य सबपापोंका नाश करता है।

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।

संनियम्यतु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥१५॥ (म०)

मनुष्य केवल इन्द्रियों के संग से दोष अर्थात् पाप को प्राप्त होता है और उनको ही रोकने से सिद्धि लाभ करता है।

यथाषण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथागौर्गविचाफला।

यथाचाज्ञेऽफलं दानं तथाविप्रोऽनृचोऽफलः ॥१६॥ (शु०)

जैसे नपुंसक पुरुष स्त्री के लिये निष्फल है जैसे एकगाय दूसरीगाय के लिये निष्फल है जैसे मूर्ख को दान देना निष्फल है वैसे ही वेदसे हीन ब्राह्मण निष्फल है।

नतिष्ठति तुयः पूर्वां नोपास्ते यश्चपश्चिमाम्।

सशूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्मात् द्विजकर्मणः ॥१७॥ म०

जो प्रातःकाल की संध्या को नहीं उपासता है और सायंकाल की भी

जहाँ उपासना है वह द्विज सम्पूर्ण कर्मों से बाहर करने के योग्य है।

कामो लोभस्तथा क्रोधो दंभस्त्वार इत्यमी।
महाद्वाराणि ऽवीचीनां तस्मादेतांस्तु वर्जयेत् ॥१८॥ (म०)

काम क्रोध लोभ दंभ ये नरक के चार महाद्वार हैं इसलिये इन को त्यागना चाहिए।

वर्धयन्निह धर्म्मार्थौ सेवितौ सद्भिरादरात्।
निगृहीतेन्द्रियग्रामः कुर्वीत गुरुसेवनम् ॥१९॥ (मु०)

यत्न से इन्द्रिय गणों के निग्रह पूर्वक सज्जनों से सेवित अर्थ धर्म को बढ़ाताहुआ गुरु की सेवा को करे।

संमानाद्ब्राह्मणो नित्य मुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येवचाकांक्षे दवमानस्य सर्वदा ॥२०॥ म०

ब्राह्मण सम्मान से विष के समान प्रति दिन डरे और अपमान को अमृत के समान सदा इच्छा करे अर्थात् तिरस्कार होनेपर खेद न करे।

सुवृत्तः शीलसम्पन्नः प्रसन्नात्मात्मविद्बुधः।
प्राप्येहलोके संमानं सुगतिं प्रेत्यगच्छति ॥२१॥

जो सदाचार शीलयुक्त सदासन्तुष्ट, आत्मज्ञानी और पण्डित है वही इस लोक में सन्मान पाता है तथा मरनेपर भी उत्तम गति को प्राप्त होता है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौच मिन्द्रिय निग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥२२॥ (म०)

धर्म के दश लक्षण कहे हैं १ धृति (अर्थात् धारणशक्ति) २ क्षमा (अर्थात् किसी से अपकार पाकर उसका अपकार न करना और बुराई के बदले भलाई करना) ३ दम (अर्थात् विकार करने वाला विषय पाकर मन में विकार न होने देना) ४ चोरी का त्याग ५ पवित्रता ६ विषयों से इन्द्रियों का रोकना ७ शास्त्र आदि का ज्ञान ८ आत्म ज्ञान ९ सत्य १० क्रोध का हेतु रहते भी क्रोध न करना।

न हायनैर्नपलितैर्नवित्तेन न बन्धुभिः ।

ऋषयश्चक्रिरे धर्म्मं योनूचानः सनोमहान् ॥२३॥ म०

वर्ष और केश का पकना द्रव्य और सम्बन्ध इन सभों से मनुष्य बड़ा नहीं होता ऋषि लोगोंने यही नियम करदिया है कि हम सबमें बड़ा वही है जो साङ्गवेदों का जाननेवाला है ।

एकः शयीत सर्वत्र नरेतः स्कन्दयेत् क्वचित् ।

कामाद्धिस्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥२४॥ म०

ब्रह्मचारी सब जगह अकेला सोया करे कदाचित् भी वीर्य्य को न गिरावे क्यों कि इच्छा से वीर्य्य को गिराताहुआ अपने व्रत को नष्ट कर डालता है ।

तृतीयोऽध्यायः

आचार

रज्यते सत्फले स्वान्तं दुष्फले न हि कस्यचित् ।

सदसद् बोधकान्येव दृष्ट्वा शास्त्राणि चाचरेत् ॥१॥ शु०

अच्छेफल की प्राप्ति से सब का मन प्रसन्न होता है दुष्फल की प्राप्ति से किसीका भी मन प्रसन्न नहीं होता इस से सत् असत् के बोध कराने वाले शास्त्रों का अवलोकन करके व्यवहार करे ।

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।

चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशोबलम् ॥२॥ (चा०)

नम्रस्वभाव वाले और नित्य वृद्ध जनों की सेवा करनेवाले मनुष्य की ये चारचीजें अर्थात् आयु विद्या यश और बल बढ़ती जाती है ।

शीलम्प्रधानम्पुरुषे तद्यस्येह प्रणश्यति ।

नतस्य जीविते नार्थो नधनेन न बन्धुभिः ॥३॥ (उ०)

चरित्र ही पुरुष का प्रधान गुण है जिसका चरित्र इसलोक में नष्ट होगया उसका जीवन धन और मित्र सबही वृथा है ।

यद्यदा चरति श्रेष्ठ स्तत्तदेवे तरोजनः ।
सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते ॥४॥ गी०

श्रेष्ठ जन जो जो आचरण करते हैं इतर अन्यान्य जन भी उसी आचरण को करते हैं जिस बात को श्रेष्ठ पुरुष प्रमाण ठहराते हैं इतर जन भी उसी के अनुसार चलते हैं।

अनारोग्य मनायुष्य मस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥५॥ म०

अतिभोजन करने से रोग बढ़ता है आयु कमहोती है स्वर्ग प्राप्ति नहीं होसकती पवित्र कर्मों के करने में बाधा पढ़ती है और जगत में निन्दा होती है इस से मनुष्य को चाहिए के अति भोजन न कियाकरे।

दोहा भोजन सोइ सराहिये जोशरीर सुखदाइ ।
दुखदाई वह होत है जो मिति से अधिकाइ ।

नजातिःकारणं तात गुणाः कल्याण कारणम् ।
व्रतस्थमपि चाण्डालं तंदेवा ब्राह्मणं विदुः ॥६॥

हे तात हे युधिष्ठिर जाति कल्याण का हेतु नहीं है किंतु गुण ही कल्याण कारक है यदि चाण्डाल भी इन्द्रियों के संयमरूपी व्रत में स्थित हो तिसको भी देवता ब्राह्मण जानते हैं ।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलंपिवेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् ॥७॥ म०

भलीभांति देखकर पैर रखना चहिए वस्त्रसे छानकर जल को पीना चाहिए सत्य से पवित्र करके वचन बोलना चाहिए और शुद्ध मन से आचरण करना चाहिए।

नजाति नंकुलंराजन् नस्वाध्यायः श्रुतन्नच ।
कारणानि द्विजत्वस्य व्रतमेवहि कारणम् ॥८॥

हे राजन् जाति कुल वेदोध्ययन शास्त्रका श्रवण यह सब द्विजत्व का

कारण नहीं है किंतु इन्द्रियों का संयम रूपी व्रतही द्विजत्व का कारण है।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।

विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥९॥

जल से देह शुद्ध होता है मन सत्याचरण से, जीवात्मा विद्या और तप से, और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

अनायुष्यं दिवास्वप्नं तथाभ्युदित शायिता।

प्रगे निशा माशुतया येचोच्छिष्टाः स्वपन्तिवै ॥१०॥

दिन को नींद लेना और सूर्योदय होने के उपरान्त सोतेरहना आयु को क्षय करता है प्रातःकाल में तथा रात्रि को शीघ्र सोजाना और अशुचि होके सोना ये सब निषिद्ध हैं।

चतुर्वेदोपि दुर्वृत्तः शूद्रादल्पतरः स्मृतः।

तस्माद्विद्धि महाराज व्रतं ब्राह्मण लक्षणम् ॥११॥

जो ब्राह्मण चारो वेदो को पढ़ाभी हो परन्तु जो खोटेमार्ग में प्रवृत्त है वह शूद्रसे भी अधम है इसकारण हे राजन् व्रतही ब्राह्मण का लक्षण है।

रजसाभि प्लुतांनारीं नरस्य ह्युपगच्छतः।

प्रज्ञातेजो बलञ्चक्षु रायुश्चैव प्रहीयते ॥१२॥ (म०)

जो मनुष्य रजस्वला नारी गमन करता है उस की बुद्धि तेज चक्षु और परमायु का नाश होता है।

नाप्सुमूत्रं पुरीषंवा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत्।

अमेध्य लिप्त मन्यद्वा लोहितंवा विषाणिवा ॥१३॥ (म०)

जल के भीतर मल मूत्र न करें न थूकें अथवा वस्त्र को जिस में विष्ठा वा मूत्र लगा हो जल के भीतर नधोवें और लोहू या किसीप्रकार का विष न डालें।

आचार हीनं नपुनंतिवेदा यद्यप्यधीता सहषड् भिरङ्गैः।

छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडंशकुन्ता इवजातपक्षाः ॥१४॥

यदि चारों वेद छः अंगों के साथ भी पढ़े गये हों तौभी वे आचाररहित को पवित्र नहीं करसकते वेद मृत्युकाल में उसको त्यागदेते हैं जैसा पक्षीका बच्चा पर निकलने पर अपने घोसले को छोड़देता है इसनिमित्त विद्वानको भी किसी काल में आचार को त्यागना नहीं उचित है।

आचाराल्लभते चायु राचाराल्लभते श्रियम्।

आचाराल्लभते कीर्तिं पुरुषः प्रेत्य चेहच ॥१५॥ (अ०)

भले आचार से मनुष्य की आयु बढ़ती है धन प्राप्ति होती है और आचारही से इस लोक में तथा मरनेपर यश बढ़ता है ।

श्रेयान्यत्कुरुते कर्म तत्करोत्य खिलोजनः।

मनुतेयत्प्रमाणंस स्तदेवा नुसरत्यसौ ॥१६॥ ग० गी०

जो कर्म महान् पुरुष करते हैं वही कर्म इतरजन भी करते हैं वे जिस को प्रमाणिक समझते हैं और भी उसी को मानते हैं।

सत्यधर्म्मार्य्य वृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा।

शिष्यांश्च शिष्याद्धर्म्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥१७॥ (म०)

भले लोगों के आचार, सत्यधर्म्म तथा पवित्रता इन सब में सर्वकाल प्रवृत्त रहै भार्या पुत्र दास छात्र इन सब को धर्म का करना सिखा वै वाणि बाहु उदर इनका संयम करे वाणि का संमय सत्य भाषण से होता है बाहु के बल से किसी को पीड़ा नदेवै तब बाहु का संयम होता है जो कुछ थोड़ा सा मिलजाय उसी के भोजन से संतुष्ट रहने से उदर का संयम होता है ।

वनेऽपिदोषाः प्रभवन्ति रागिणां

गृहेऽपि पञ्चेन्द्रिय निग्रहस्तपः।

अकुत्सिते कर्म्मणियः प्रवर्त्तते

निवृत्त रागस्य गृहं तपोवनम् ॥१८॥ (शा०)

विषयानुरागो पुरुषों को वनमें भी दोष घेरलेते हैं घरपर पांचों इन्द्रियों का संमय ही तप है जो निन्दित कर्मों में प्रवृत्त नहीं होता ऐसे विषयानुराग रहित पुरुष के लिये घरही तपोवन है ।

चतुर्थो ऽध्याय:

उद्यम

आरभेतैव कर्म्माणि श्रान्त: श्रान्त: पुन: पुन: ।
कर्म्माण्या रभमाणंहि पुरुषंश्रीर्निषेवते ॥१॥ (म०)

काम करते करते यदि थक जाय तौभी कामों का आरम्भ करता ही रहे क्यों कि काम के आरम्भकर्ने वाले को सेवा लक्ष्मी करती है ।

दोहा उद्यम किये अनेक विधि सबैन जवहुं काम
दैव प्रवल तव कहत हैं जे पण्डित मतिधाम ।

उद्योगिनं पुरुष सिंह मुपैतिलक्ष्मी ।
दैवेन देय मितिकापुरुषा वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरुपौरुष मात्मशक्त्या ।
यत्नेकृते यदिनसिध्यति कोऽत्रदोष: ॥२॥ हि०

उद्यमी मनुष्य के पास धन अपने आप जाता है भाग्य से मिलेगा ऐसी बात उद्योगहीन पुरुष कहते हैं भाग्यका भरोसा छोडकर अपने सामर्थ्य से पुरुषार्थ करना चाहिऐ यदि यत्न करके भी काम सिद्ध न होवे तो उस में क्या दोष है ।

दोहा श्रमही सो सबमिलत है
बिन श्रम मिलैन काहि ।
सीधी अंगुली घीजम्यो
क्यों हु निकरै नांहि ।

नखल्प मप्यव्यवसायभीरोः
करोतिविज्ञान विधिर्गुणंहि ।
अंधस्य किंहस्त तलस्थितोऽपि ।
प्रकाश यत्यर्थ मिहप्रदीपः ॥३॥ (भ०)

उद्यम से डरनेवाले को विज्ञान विधि कुछभी गुणदायक नहीं होती जैसे इसलोक में अंधे को हथेली में रक्खा हुवा दीपक भी पदार्थ को नहीं दिखलाता।

उद्यमेनहि सिद्ध्यन्ति कार्य्याणि न मनोरथैः ।
नहिसुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखेमृगाः ॥४॥ चा०

उद्यमसे ही प्रत्येक कार्य्यसिद्ध होते हैं केवल मनोरथ से नहीं जैसे सोतेहुए सिंह के मुख में मृग अपने आप नहीं प्रवेश करते हैं।

दोहा उद्यमघर लक्ष्मीबसे
ज्यौंपंखिमें पौन ।
चलै फिरै तो कुछमिले
बैठे दाता कौन ।

पूर्वजन्म कृतंकर्म तद्दैव मितिकथ्यते ।
तस्मात्पुरुष कारेण यत्नं कुर्य्यादतंद्रितः ॥५॥

पहिले जन्मका किया हुवा कर्म प्रारब्ध कहलाता है इसहेतु आलस्य रहित हो कर्म करने में यत्न करतारहे।

दोहा श्रमकोसें सुख मिलत है बिनउपाय नहीं भोग
दैव दैव करत आलसी भोगत हैं दुःखशोक।

निपानमिव मण्डूकाः सरःपूर्ण मिवाण्डजाः ।
सोद्योगं नरमायान्ति विवशाः सर्व संपदः ॥६॥ हि०

जैसे कुंड में मेंडक और बड़े तालाब में जैसे पक्षी आते हैं ऐसे ही उद्योगी मनुष्य के पास सारी सम्पत्तियाँ अपने आप चली आती हैं ।

दोहा। श्रमकोसें धन होतहै धनही सुखको मूल ।
व्यवसाई अरु चतुर नर उद्यम को मत भूल ।

एकेनापिहि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम् ।
क्रियते भास्करेणेव स्फारस्फुरित तेजसा ॥७॥ नि०

एकही पराक्रमी पुरुष अपने प्रबल पराक्रम से सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने वश में कर सकता है जैसे एक सूर्य समस्त जगत को प्रकाशमान करता है।

आलस्यंहि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः ।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति ॥८॥ नि०

आलस्य मनुष्य के देह में बड़ा शत्रु है, उद्यम के समान दूसरा कोई मित्र नहीं जिस के करने से मनुष्य कभी दुखित नहीं होता ।

दोहा आलस बैरी बसत तन
सब सुखकों हरिलेत
त्योंही उद्यम बंधुसों
किये सकल सुखदेत ।

नहि दैवेन सिध्यन्ति कार्य्याण्येकेन सत्तमः ।
नचापि कर्मणैकेन द्वाभ्यांसिद्धिस्तु योगतः ॥९॥

एक संग दैव से वा एक संग पौरुष से कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता इन दोनों के एकत्र होनेसे ही सिद्धि प्राप्त होती है ।

आबद्धा मानुषाः सर्वे निबद्धाः कर्मणोर्द्वयोः ।
दैवे पुरुष कारेच परन्ताभ्यांनविद्यते ॥१०॥

मनुष्य दैव और पौरुष इन दोनो कर्मों से बंधे हुए हैं दैव और पौरुष के सिवाय और कुछ भी बलवान नहीं है ।

पञ्चमोऽध्यायः

सज्जनता।

साधोः प्रकोपि तस्यापि मनोनायाति विक्रियाम् ।

नहि तापयितुं शक्यं सागराम्भस्तृणोल्कया ॥१॥ (हि०)

साधु मनुष्य के मन को क्रोध दिलानेसे भी उस में विकार नहीं उत्पन्न होता है जैसा समुद्र का पानी फूस की आग से गरम नहीं होता ।

धनानि जीवितञ्चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् ।

सन्निमित्ते वरंत्यागो विनाशे नियते सति ॥२॥ (हि०)

बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि धन और प्राणका भी औरों के लिये त्याग करे क्योंकि धन इत्यादि का विनाश तो निश्चय होना है इसलिये सत्कार्य्य में त्याग करना ही उत्तम है ।

नित्योधर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवोऽनित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ।

त्यक्त्वाऽनित्यं प्रतितिष्ठस्वनित्यं सन्तुष्यत्वं तोषपरोहिलाभः ॥३॥ वि०

धर्मही नित्य है सुख दुःख ये अनित्य हैं जीव अनित्य है जीवका कारण अविद्या यहभी अनित्य है इस से इसको छोड़ना चाहिए और जिसका कभी नाश नहीं ऐसी जो नित्य वस्तु परमेश्वर है उस में निष्ठा रख के संतोष पाना उचित है सब लाभों में संतोष ही बड़ालाभ है ।

यदाचरण मालोक्य तुष्यन्ति साधवोजनाः ।

तत्पुण्य मिति विज्ञेयं तत्कर्तव्यं सदाबुधैः ॥४॥

जिस आचरण को देखकर साधुजन प्रसन्न होते हैं उस को पुण्य कहते हैं बुद्धिमान जनों को ऐसा कर्म करना चाहिये ।

स्मरन्ति सुकृतानेव नवैराणि कृतान्यपि ।

सन्तः प्रत्यभि जानन्तो लब्ध्वा प्रत्ययमात्मनः ॥५॥ (सभा०)

सज्जन अपने निज अनुभव द्वारा परायेदुःख को विशेष समझते हैं इसलिये वे केवल उपकार काही स्मरण रखते हैं और यदि कोई शत्रुतासे भी अपकार करेतो भूलजाते हैं ।

नाप्राप्त मभिवाञ्छन्ति नष्टंनेच्छन्ति शोचितुम् ।

आपत्स्वपिन मुह्यन्तिनरा: पण्डितबुद्धय: ॥६॥ (हि०)

बुद्धिमान मनुष्य दुष्प्राप्य वस्तु की इच्छा नहीं करते नष्ट वस्तु का सोच भी नहीं करते आपत्तिकाल में मोहित भी नहीं होते ।

यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्तिच कुर्वते ।
नकिञ्चिदवमन्यन्ते नरा:पण्डित बुद्धय: ॥७॥

जो लोग अपनी शक्ति के अनुसार कार्य्य करने की इच्छा करते हैं और उसी अनुसार कार्य्य करतेभी हैं और किसी का अपमान नहीं करते वेही पण्डित हैं ।

अरण्ये विजनेन्यस्तं परस्वंदृश्यते यदा ।
मनसापि नहिंसन्ति तेनरा: स्वर्गगामिन: ॥८॥ अ०

जो निर्जन जंगलमें भी पराया धन देख कर जी से भी लालच नहीं करते वे स्वर्ग को जाते हैं ।

शत्रुंमित्रञ्च येनित्यं तुल्येन मनसानरा: ।
भजन्ति मैत्रा:सङ्गम्य तेनरा: स्वर्गगामिन: ॥९॥ (अ०)

जो शत्रु और मित्र के साथ समभाव से वर्त्ताव करते हैं अर्थात् दोनो से मैत्रीभाव रखते हैं वे स्वर्ग को जाते हैं ।

येप्रियाणि प्रभाषन्ते प्रियमिच्छन्ति सत्कृतम् ।
श्रीमन्तो वन्द्यचरिता देवास्तेनरविग्रहा: ॥१०॥

जो जन प्रिय अर्थात् मीठी वाणी बोलते हैं और उसीप्रकार दूसरे का प्रिय अर्थात् भला करना चाहते हैं वेही श्रीमान् और प्रशंसनीय चरित्र हैं और मनुष्य रूपसे साक्षात् देवता हैं ।

नचैवोक्तान वानुक्ता हीनत: परुषागिर: ।
प्रतिजल्पन्ति वैधीरा: सदातूत्तम पूरुषा: ॥११॥ (सभा०)

नीच मनुष्य बुराकहे वा नकहे परधीर जो मनुष्य हैं वे कभी उनका प्रत्युत्तर नहीं देते हैं ।

हिमांशु मालीचयथा नवोत्फुल्लोत्पलंसरः ।
आनन्दयति चेतांसि तथासुजन चेष्टितम् ॥१२॥

जैसा चन्द्रमा सरोवर को जिस में नये फूले कमल हैं शोभित करता है ऐसे ही सज्जन का आचरण भी चित्त को आनन्दित करता है ।

दयालवश्च दातारो रूपवन्तो जितेन्द्रियाः ।
परोपकारिणश्चैव तेऽपूर्व्वा मानवाः स्मृताः ॥१३॥

जो लोग दयावान दानशील रूपवान जितेन्द्रिय और परोपकारो हैं वे मनुष्य अपूर्व अर्थात् अद्वितोय हैं ।

येपरेषां श्रियंदृष्ट्वा नतपन्ति विमत्सराः ।
प्रहृष्टाश्चाभि नन्दन्तितेनराः स्वर्गगामिनः ॥१४॥

जो मनुष्य दूसरे के ऐश्वर्य्य को देख के नहीं जलते हैं वरञ्च हिंसारहित और सन्तुष्टहोकर आनन्द प्रकाश करते हैं वे जन स्वर्ग को जाते हैं ।

सर्वहिंसानि वृत्ताये नराःसर्वं सहाश्चये ।
सर्वस्याश्रय भूताश्च तेनराः स्वर्गगामिनः ॥१५॥ (हि०)

जो मनुष्य सब हिंसाओं से रहित हैं जो सब सहने वाले हैं जो सब को आश्रय देनेवाले हैं वे मनुष्य स्वर्ग गामी होते हैं ।

यस्तुशत्रोर्व शस्यस्य शक्तोऽपि कुरुते दयाम् ।
हस्त प्राप्तस्य वीरस्यतञ्चैव पुरुषं विदुः ॥१६॥

शत्रु के अपने वश में आनेपर भी वा वीर के पकड़े जानेपर भी जो मनुष्य उसे दण्डदेने वा मारने की सामर्थ रखके भी उसपर दया करे वही पुरुष कहलाता है ।

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यःपश्यतिसपण्डितः ॥१७॥ (चा०)

परस्त्रियों को माता के समान पराये धन को पत्थर के समान सबजीवों को अपने समान जो देखता है या मानता है वही पण्डित है ।

सजातीयेन जातेन यातिवंशः समुन्नतिम् ।
परिवर्तिनि संसारे मृतःको वानजायते ॥१८॥ (नि०)

इस संसार में उसो मनुष्य का जन्म सफल है जिस के जन्मने से वंशको उन्नति हो नहीं तो गाडी के पहिये के समान सदा घूमनेवाले संसार में सभी जन्मलेते और मरते हैं ।

मनसि वचसि काये पुण्य पीयूष पूर्णा ।
स्त्रिभुवन मुपकार श्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुण परमाणून् पर्वती कृत्य नित्यं ।
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥१९॥ (नि०)

ऐसे जन जगत में विरले हो हैं जिन के मन में वचन में और शरीर में पुण्यरूपी अमृत भराहो और जो उपकार से तीनों भुवनों को तृप्त करनेवाले हैं और दूसरों के थोडेसे भी गुणों को पर्वत समान बढ़ाकर दिखाते हैं और मन में सदा प्रसन्न रहते हैं ।

सम्पत्सु महतांचित्तं भवत्युत्पल कोमलम् ।
विपत्सुच महाशैल शिलासङ्घात कर्कशम् ॥२०॥

महात्मा लोगों का चित्त ऐश्वर्य में कमल से भी कोमल और आपत्ति में पर्वत की बडी शिला के समान कठिन होजाता है ।

विपदिधैर्य्यमथा भ्युदयेक्षमा
सदसिवाक् पटुता युधिविक्रमः ।
यशसिचाभि रुचिर्व्यसनंश्रुतौ
प्रकृतिसिद्ध मिदंहि महात्मनाम् ॥२१॥ भो०

विपत्ति में धीरज अपनी वृद्धि में क्षमा, सभा में वाणी की चतुरता युद्ध में पराक्रम, यश की इच्छा, शास्त्र में व्यसन, ये छः गुण महात्माओं में स्वभाव होसे होते हैं ।

पद्माकरं दिनकरो विकचो करोति ।
चन्द्रोविकाशयति कैरवचक्रवालम् ।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलंददाति ।
सन्तः स्वयं परहिते सुकृताभि योगाः ॥२२॥ नि०

जैसे सूर्य्य बिना प्रार्थना किये ही कमल को खिलाता है चन्द्रमा भी कुमुदिनो के समूह को आपही प्रफुल्लित करता है और मेघ भी बिना मांगे ही जल बरसाता है वैसे ही सत्पुरुष भी बिना कहे ही परोपकार करने में तत्पर रहते हैं ।

निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढ सेवितम् ॥
कीर्तिञ्च लभते लोके नचानर्थेन युज्यते ॥२३॥ हि०

मूर्ख वृथा कलह को करते हैं बुद्धिमान मनुष्य ऐसा नहीं करते हैं और इसी से जग में यश पाते हैं ।

त्रिविधस्यापि दुःखस्य सन्तोषे विलयो भवेत् ॥
प्रज्ञया संस्थितश्चायं प्रसन्न हृदयो भवेत् ॥२४॥ ग०

एक सन्तोष को प्राप्ति होने पर तीनों प्रकार के दुःख नष्ट हो जाते हैं इसी प्रकार स्थिर बुद्धि वाले का मन सदा प्रसन्न ही रहता है ।

सन्तोषा मृत तृप्तानां यत्सुखं शान्त चेतसाम् ।
कुतस्तद्धन लुब्धानामितश्चे तश्चधावताम् ॥२५॥ हि०

जो सुख संतोष रूप अमृत में तृप्त शान्तचित्त पुरुषोंको है सो सुख इधर उधर दौड़तेहुए धन के लोभियों को कहां है ।

सर्वाः संपत्तयस्तस्य संतुष्टं यस्यमानसम् ।
उपानद्गूढ़.पादस्य ननुचर्मा वृतेवभूः ॥२६॥ हि०

जिसका मन संतुष्ट है उस को सब संपत्ति हैं जूतापैर में पहिने हुए मनुष्य को पृथ्वीचमड़े से मढ़ीहुईसी है ।

सन्तोषम्परमास्थाय सुखार्थी संयतोभवेत् ।

सन्तोषमूलंहि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥२७॥ म०

परम सन्तोष को पाके सुखार्थी संयम (अर्थात् इन्द्रिय निग्रह) करे क्योंकि सुख की जड़ संतोष है दुखकोजड़ असंतोष है ।

तुल्यनिन्दा स्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।

अनिकेतः स्थिरमति र्भक्तिमान् मे प्रियोनरः ॥२८॥ ग०

निन्दा स्तुति को समान जान प्रयोजन के अनुसार वर्त्ताव करे और जो प्राप्त हो उस से संतुष्ट हो बुद्धि स्थिर रक्खे ऐसा भक्तिमान् पुरुष ईश्वर को प्यारा है ।

समः शत्रौच मित्रेच तथामाना पमानयोः ।

शीतोष्ण सुखदुःखेषु समः सङ्ग विवर्जितः ॥२९॥ ग०

शत्रु मित्र मान अपमान को समान जाने और शीत उष्ण और सुख दुःख में समतारख असंग रहे ।

प्रलये भिन्न मर्यादा भवन्ति किलसागराः ।

सागरा भेद मिच्छन्ति प्रलयेऽपि नसाधवः ॥३०॥ चा०

समुद्र प्रलय के समय में अपनी मर्य्यादा को छोड़देते हैं और सागर भेदकी इच्छाभी रखते हैं परन्तु साधुलोग प्रलय होनेपर भी अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ते ।

दोहा तदपि तजत मर्याद नहिं साधु सुभाव गंभीर ।
प्रलयकालहु में रखैं मर्यादा मनधीर ।

षष्ठोऽध्यायः

संसर्ग

शुचित्वं त्यागिता शौर्य्यं समानं सुख दुःखयोः ।

दाक्षिण्यं चानुरक्तिश्च सत्यताच सुहृद्गुणाः ॥१॥ हि०

शुद्ध रहना, लोभ न करना, वीरता, सुख दुःख समान मानना, भद्रता, स्नेह और सत्य प्रेम ये मित्र के गुण हैं ।

मोहजालस्य योनिर्हि मूढ़ैरेव समागमः ।

अहन्यहनि धर्मस्य योनिः साधु समागमः ॥२॥ हि०

मूढ़ों का समागम मोहका कारण होताहै पर साधुओं का समागम धर्म वृद्धि का कारण होताहै ।

दोहा । संगति कीजे साध की हरे और को व्याधि ।
ओछी संगति नीचकी आठों पहर उपाधि ।

उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे ।

राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥३॥ हि०

उत्सव, विपद, दुर्भिक्ष, विद्रोह, राजद्वार और श्मशान में जो साथ करता है उसी को मित्र समझना चाहिये ।

दोहा । सुख में सज्जन बहुत हैं दुख में लोने कोन ।
सोना सज्जन कसन को बिपत कसोटी कोन ।

न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद्रिपुः ।

व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा ॥४॥ हि०

न कोई किसी का मित्रहै न कोई किसी का शत्रुहै व्यवहार ही से मनुष्य मित्र या शत्रु होतेहैं ।

कीटोऽपि सुमनः सङ्गा दारोहति सतांशिरः ।

अश्मापियाति देवत्वंमहद्भिः सुप्रतिष्ठितः ॥५॥

कोड़ा भी फूलों के संग से श्रेष्ट पुरुषों के सिर पर चढ़ जाताहै और पत्थर भी बड़े जनों से प्रतिष्ठा किया हुआ देवत्व को पाताहै ।

दोहा । उत्तम जनके सङ्ग में सहज होय सुखभास ।
जैसे नृप लावै अतर लेत सभाजन बास ।

यथोदय गिरेर्द्रव्यं सन्नि कर्षेण दीप्यते ।

तथा सत्संनिधानेन हीन वर्णोऽपिदीप्यते ॥६॥

जैसे उदयाचल की वस्तु सूर्य्य के समीप होने से प्रकाशित होतीहै ऐसे ही

सत्संग से नीच जाति भी प्रकाशित होती हैं ।

दोहा । होय मन्द मिट कलुषता सत्सङ्गति को पाय ।
जैसे पारस को परस लोह कनक ह्वैजाय ।

जाड्यंधियो हरतिसिञ्चति वाचिसत्यम्
मानोन्नतिं दिशति पाप मपाकरोति ।
चेत: प्रसाद यति दिक्षु तनोति कीर्त्तिम्
सत्सङ्गति: कथयकिन्न करोति पुंसाम् ॥७॥ भ०

सत्सङ्गति बुद्धि की जड़ता को नाश कर देती है बाणी की सत्यता को बढ़ाती है मान की वृद्धि करती है और पाप को दूर करती है चित्त को प्रसन्न रखती है देशान्तरों में कीर्ति को फैलाती है कहिए तो सत्सङ्गति मनुष्य का क्या नहीं करती अर्थात् उससे सभी वस्तु प्राप्त होती हैं ।

सुजनै: सङ्गतं कुर्य्याद्धर्मायच सुखायच ।
सेव्य मानस्तु सुजनै र्महानति विराजते ॥८॥ शु०

धर्म और सुख के लिये सज्जन का संग करना चाहिए क्योंकि महान् पुरुष सज्जनों से वेष्टित होकर अत्यन्त शोभा पाताहै ।

सतां सकृत् सङ्गत मीप्सितं परं
तत: परं मित्रमिति प्रचक्षते ।
नचाफलं सत् पुरुषेण सङ्गतं
तत: सतां सन्निवसेत् समागमे ॥९॥

सज्जनों से एक बार भेट होने से ही परम मैत्री हो जाती है सज्जनों का सङ्ग कभी विफल नहीं होता है इस कारण उनका संसर्ग करना चाहिये ।

यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधि गच्छति ।
तथा गुरु गतां विद्यां शुश्रूषु रधि गच्छति ॥१०॥ (म०)

गुरु की सेवा का फल यहहै जैसे मनुष्य कुदाली से खोदते खोदते जलको

प्राप्त होजाता है ऐसे ही गुरु की सेवा करके अपने गुरु में स्थित विद्या को प्राप्त करता है।

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिश्चापि न कारयेत्।
उष्णोदहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ॥११॥ हि०

दुष्ट से मित्रता और प्रीति नहीं करनी चाहिये अङ्गार गरम रहने पर तो हाथ जलाता है और ठण्ढा होजाने पर भी हाथ काला करता है।

दोहा॥ संगत से सब होत है वोही तिल बहि तेल।
जातपात सब छोड़ के पावे नाम फुलेल॥
बसि कुसंग चाहत कुशल तुलसी ये मन सोच।
महिमा घटो समुद्र की रावण बसे परोस॥

सत्संगाद्गुण संभूति रापदां लय एव च।
स्वहितं प्राप्यते सर्वैं रिहलोके परत्र च ॥१२॥ ग०

सतसंग से गुण की प्राप्ति और आपत्ति का नाश होताहै इसलोक और परलोक में अपना कल्याण होताहै।

सत्संगः परमं तीर्थं सत्संगः परमं पदम्।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य सत्सङ्गं सततं कुरु ॥१३॥

सत्संग ही परम तीर्थ है सत्संगत ही से परमपद मिलता है इसलिये सबको छोड़ सत्संग करना उचित है।

मत्या परीक्ष्य मेधावी बुद्ध्या सम्यक्‌ च असकृत्।
श्रुत्वा दृष्ट्वाथ विज्ञाय प्राज्ञैर्मैत्रीं समाचरेत् ॥१४॥ उ०

बुद्धिमान को चाहिये अपनी युक्ति से परीक्षा करके और बुद्धि में बार बार निश्चय करके भलीभांति देख सुन और जानकर ज्ञानियों से मैत्री करे।

सप्तमोऽध्यायः

पुत्र, नारी धर्म्म इत्यादि

यम्माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
नतस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुम्वर्ष शतैरपि ॥१॥ म०

मनुष्योंके जन्म देने और उनके पालनमें जो कष्ट माता पिता सहते हैं उसका बदला सौ वर्षों में भी नहीं दिया जासकता है ।

तयोर्नित्यम्प्रियङ्कुर्य्यादाचार्य्यस्य च सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥२॥ म०

इस कारण जो बात माता पिता को और आचार्य अर्थात् गुरु को भली लगे उसको सदा किया करे क्योंकि इन तीनों को प्रसन्न रखने से ही सब तपस्या पूर्ण होती हैं ।

तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमन्तप उच्यते ।
नतैरभ्यननुज्ञातो धर्म्ममन्यं समाचरेत् ॥३॥ म०

इन तीनों (माता पिता और आचार्य) की शुश्रूषा अर्थात् टहल करना ही परम तप कहाजाता है, और तीनों की आज्ञा बिना किसी दूसरे धर्म को कभी न करे ।

सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वा स्तस्याफलाः क्रियाः ॥४॥ म०

जिस मनुष्य ने इन तीनों का सत्कार करलिया है उसने मानो सब ही धर्मों का यथोचित परिपालन करलिया है और जिसने इन तीनों का आदर सत्कार नहीं किया जानो कि उसके सबही कर्म निष्फल हैं ।

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥५॥ म०

तीनों लोक तीनों आश्रम तीनों वेद तीनों अग्नि येही तीनों हैं।

तत्कर्म नियतं कुर्य्याद् येन तुष्टो भवेत् पिता।
तन्नकुर्य्याद् येन पिता मनागपि विषीदपि ॥६॥ शु०

ऐसा काम करना चाहिये जिससे पिता सन्तुष्ट होवे और ऐसा काम नहीं करना चाहिये जो किञ्चिद् भी उस को बुरा लगे।

पुत्रस्य पितु राज्ञाहि परमं भूषणं स्मृतम्।
भार्गवेण हता माता राम वस्तु वनं गतः ॥७॥ शु०

पिता कि आज्ञा पालन करना पुत्र के लिये श्रेष्ठ भूषण कहा है क्योंकि पिता की आज्ञा पालन करने के लिये परशुराम ने अपनी माता को मार-डाला और श्रीरामचन्द्र जी ने वन वास लिया।

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
नशोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा ॥८॥ म०

जिस कुल में स्त्री दुःख पाती हैं वह कुल शीघ्र ही नष्ट होजाता है और जिस कुल में स्त्री दुःख नहीं पाती हैं वह कुल सदा बढ़ता है।

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्य्या तथैवच।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्रवैध्रुवम्। ॥९॥

जिस कुल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री सदा प्रसन्न रहते हैं उस कुल में आनन्द लक्ष्मी और सौभाग्य निवास करते हैं।

छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हित कर्म्मसु।
दासीवा दिष्टकार्येषु भार्याभर्तुः सदा भवेत् ॥१०॥

स्त्री को चाहिए कि छाया के समान पति के अनुगत रहे उस के हित कर्म में सखी के समान होवे और दासी के तुल्य उस की आज्ञा में तत्पर रहे।

न कामेषु न भोगेषु नैश्वर्य्ये न सुखे तथा ।
स्पृहा यस्या यथा पत्यौ सा नारी धर्म भागिनी ॥११॥ शु०

जो स्त्री काम भोग ऐश्वर्य्य और सुख में ऐसी इच्छा नहीं रखती जैसे अपने पति में रखती है वही धर्म्म की भागिनी होती है ।

भार्य्यावन्त: क्रियावन्त: सभार्य्या गृहमेधिन: ।
भार्य्या वन्त: प्रमोदन्ते भार्य्यावन्त: श्रियान्विता: ॥१२॥

जिन की भार्य्या हैं उनही की क्रिया सफल हैं जिन की भार्य्या हैं वेही गृहस्थ हैं भार्य्यावाले ही आनद करते हैं और भार्य्यावाले ही श्रीमान् हैं ।

साभार्य्या या गृहे दक्षा । साभार्य्या या प्रजावती
मनोवाक्कर्मभि: शुद्धा: । पतिदेशानु वर्त्तिनी ॥१३॥

भार्या वही है जो घर के काम धन्दों में निपुण है भार्या वही है जिस के सन्तान उतपन्न होता है भार्या वही है जो पति के आज्ञा में रहती है और मन वचन तथा कर्म्म से शुद्ध रहती है ।

स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम् ।
अतोर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चित: ॥१४॥ म०

मनुष्यों को अपने शृंगार आदि की चेष्टासे मोहित करके दूषित करना यह स्त्रीयों का स्वभ वेही है इसलिये पण्डित लोग नारी के विषय में साव-धान से रहते हैं अर्थात् उन्मत्त नहीं होते हैं ।

अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुन: ।
प्रमदा ह्युत्पथन्नेतुं काम क्रोधवशानुगम् ॥१५॥ म०

काम क्रोध सहित हो वा पण्डित हो चाहे मूर्ख हो उसे निषिद्ध राहपर लेजाने को स्त्री समर्थ है ।

विशील: कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जित: ।

उपचर्य्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥१६॥

स्त्रियों के लिये सब भूषणों को छोड़कर पति ही सर्वोपरि भूषण है और जो स्त्री पति से अलग होजाती है वह शृंगार करके भी शोभा नहीं पाती।

अष्टमोऽध्यायः

लोभ

आशानामनदी मनोरथ जला, तृष्णा तरंगाकुला

रागग्राहवती वितर्क विहगा, धैर्य्य द्रुम ध्वंसिनी।

मोहावर्त सुदुस्तराऽतिगहना प्रोतुङ्ग चिन्तातटी।

तस्याः पारगता विशुद्ध मनसो नन्दन्ति योगीश्वराः ॥१॥ (भ)

आशानाम एक नदी है जिसमें मनोरथ का जल भरा है उससे तृष्णा की तरंग बारबार उठाकरती है राग ही उसमें मगर है नाना प्रकार के तर्क अर्थात् शुभ अशुभ विचार ही उस में पक्षी हैं धैर्य रूपी वृक्ष को उखाड़ने वाली है मोह रूपी भौंरा उस में पड़ा है इस से बड़ी दुस्तर और कठिन हो रही है बड़ी चिन्ता ही उसके तट हैं उस से पार होकर केवल वडे शुद्ध मनन शील योगी ही आनन्द को पाते हैं।

लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयतेतृषाम्।

तृषार्त्तो दुःखःमाप्नोति परत्रेहच मानवः ॥२॥ हि०

लोभ से बुद्धि चलायमान होती है वही तृषा अर्थात् कामना को उत्पन्न करता है कामना वाला मनुष्य इस लोक तथा पर लोक में दुःख पाता है।

सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्तो बहुश्रुता। छेत्तारः

संशया नांच क्लिश्यन्ते लोभ मोहिताः ॥३॥ हि०

बड़े शास्त्रों को पढ़े व सुने हुए और बहुत संशयों को दूर करने वाले भी मनुष्य लोभ में ग्रस्त होकर दुःख को पाते हैं।

लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभात्कामः प्रजायते ।
लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम् ॥४॥ हि०

लोभ से क्रोध होता है लोभ ही से काम की उत्पत्ति है लोभ से ही मोह और नाश होता है लोभ ही पाप का कारण है ।

धनलुब्धोह्यसंतुष्टोऽनियतात्माजितेन्द्रियः ।
सर्वाएवापदस्तस्य यस्यतुष्टंनमानसम् ॥५॥ हि०

धन का लोभी असन्तोषी अनियतात्मा अजितेन्द्रिय और जिसका मन प्रसन्न नहुआ उस को सब आपत्ति होती हैं ।

असंभवं हेम मृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय । प्रायः समापन्न विपत्ति काले धियोऽपि पुसां मलिनी भवन्ति ॥६॥ हि०

सोने का मृग का जन्म असम्भव है तोभी राम ने मृग के लिये लोभ किया बहुधा विपत्तिकाल आनेपर पुरुषों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है ।

नवमोऽध्यायः

नीति

लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्न वृत्तिता ।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुण लक्षणम् ॥१॥ (म)

तमो गुणके लक्षण ये हैं अर्थात् लोभ (अधिक धन आदि की इच्छा) स्वप्न (नियमसे अधिक सोना) अधैर्य अथवा कायरपन, क्रूरता नास्तिकता। (ईश्वर या परलोक को नमानना) शास्त्रोक्त आचार से भिन्न आचार रखना मागने का स्वभाव डालना और उनमत्तता अथवा असावधान रहना ।

फलोपलब्धिः प्रत्यक्ष हेतुना नैवदृश्यते ।
प्राक्कर्म हेतुकीसातु नान्यथैवेति निश्चयः ॥२॥ (शु)०

कोई कार्य्य ऐसा होताहै जिस में फल की प्राप्ति दृश्यमान कारण से नहीं

देख पडतो उस में निश्चय करके पूर्व जन्म का संचित् कर्म ही हेतु है।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयन्तत्फल मश्नुते।

स्वयं भ्रमति संसारे स्वयन्तस्माद्विमुच्यते ॥३॥ (चा)

जीव अकेलाही कर्म करता है और उसका फल भी अकेला ही भोगता है आप ही संसार में भ्रमता है और आपही उस से मुक्त भी होजाता है।

परोत्कर्षा महिष्णुत्वं परकृत्य पराहति।

इत्याद्या बहवस्त्वन्ये राक्षस्याः प्रकृतेर्गुणाः ॥४॥

दूसरे की उत्कर्षता न सहनी दूसरे के काम को नष्ट करना इत्यादि बहुत से राक्षसी प्रकृति के गुण है।

कर्म कार्येन्द्रियग्रामं नियम्यास्ते स्मरन्पुमान्।

तद्गोचरान्मन्दचित्तो धिगाचारः सभाष्यते ॥५॥ ग०

जो कर्म करने वाला इन्द्रियों को रोक कर मन ही मनमें इन्द्रियों के विषयों का स्मरण करता है वह दुरात्मा तुच्छ आचार वाला कहा जाता है।

दुराचारोहि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।

दुःख भागीच सततं व्याधितोऽल्पायुरेवच ॥६॥

दुष्ट कर्म करने वाला पुरुष संसार में निन्दित होता है नित्य दुःख पाता है और रोगी होने से अल्पायु भी होजाता है।

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्चतपांमिच।

नविप्र दुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥७॥ वि०

जो दुष्टचारी अजितेन्द्रिय पुरुष है उस के वेद त्याग यज्ञ नियम और तप तथा अन्य अच्छे काम कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं होते हैं।

नधर्म शास्त्रं पठतीति कारणं

नचापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः।

स्वभाव एवात्र तथाति रिच्यते

यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः ॥८॥ हि०

दुष्ट को धर्म शास्त्र पढ़ाना और वेद का पढ़ाना धार्मिकता का कारण नहीं है उस में स्वभाव ही का बल सर्वोपरि है जैसा गाय का दूध स्वभाव ही से मीठा होता है।

अन्योदया सहिष्णुश्च छिद्रदर्शी विनिन्दकः।
द्रोहशीलः स्वान्तमलः प्रसन्नास्यः खलः स्मृतः ॥९॥ (शु)

जिस को दूसरे का भला अच्छा नहीं लगता हो दोष देखने वाला हो, निन्दक हो, द्रोह करने वाला हो और भीतर अन्तः करण में मल भरा हो और बाहर मुख से प्रसन्न दिखाई दे उस को खल कहते है।

मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्क र्मण्यन्यद्दुरात्मनाम्।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ॥१०॥ (हि०)

दुष्ट के मन में वचन में और, काम में और होता है परन्तु महात्माओं के मन में एक वचन में एक, कर्म में एक होता है।

जयेत् कदर्य्यं दानेन सत्येना नृत वादिनम्।
क्षमया क्रूर कर्माणं असाधुं साधुना जयेत् ॥११॥ (वन०)

दानसे लोभी को जय करे सत्यवचन से मिथ्यावादी को, क्षमा से क्रूर को धर्म से अधर्मी को जय करे।

सत्यंब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियंच नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥१२॥ वि०

सच बोले और प्यारा बोले अप्रिय सत्य भी नहीं बोलना चाहिए और प्रिय मिथ्या भी न बोले यही सनातन धर्म है।

विद्यागमार्थं पुत्रस्य वृत्त्यर्थं यतते चयः।
पुत्रं सदा साधुशास्ति प्रीति कृत्स पिता नृणी ॥१३॥ (शु०)

जो पिता पुत्र के विद्या लाभ और उस के जीविका के अर्थ यत्न करता है

और पुत्र को भला उपदेश करता है वह मनुष्यो पिता उस के प्रेम को बढ़ाता है।

विषादप्यमृतंग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।
अमित्रा दपि सद्वृत्त ममेध्यादपिकाञ्चनम् ॥१४॥ (म०)

अमृत विषमें भी मिलाहो तोभी विष को अलग करके उसे ग्रहण करलेना चाहिए अच्छी बात को यदि बालक भी कहे तो उस से भी सीखलेना चाहिए भला आचरण यदि शत्रु भी करे तो उस का अनुसरण करना चाहिए और सुवर्ण यदि मैले में भी पड़ा होतो उसे उठालेना चाहिए।

दुर्ज्जनः परिहर्त्तव्यो विद्ययालङ्कृतोपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ नभयङ्करः ॥१५॥ (हि०)

दुर्ज्जन यदि विद्यावान भी है तोभी उस से दूर रहना चाहिए यदि सर्प के शिर पर मणि शोभित भी हो तो क्या लोग उस से नहीं डरते ?।

दुराचारी दुरादृष्टिर्दुरावासी चदुर्ज्जनः।
यन्मैत्री क्रियते पुम्भिर्नरः शीघ्रं विनश्यति ॥१६॥

जिसका आचरण बुरा है जिस को दृष्टि पाप में रहती है जो बुरे स्थान में वास करता है और दुर्जन इन पुरुषों के साथ जो मैत्री करता है वह नर शीघ्र ही नष्ट होजाता है।

दोहा। बुरे आचरन जासु के जासु दृष्टिमें पाप
बुरे ठौर में जो बसे जो दुर्जन है आप।

दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जनः।
सर्पो दंशति काले तु दुर्जनस्तु पदे पदे ॥१७॥

दुर्जन और सर्प इन में सांप अच्छा दुर्जन बुरा इस कारण कि सांप काल आनेपर काटता है खल तो पद पद में।

दोहा। दुर्जन पद पद पर डसै सर्प काल को पाय।
तातें दुर्जन सर्प तें अधिक होत दुखदाय।

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलंत्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथवीं त्यजेत् ॥१८॥

कुल के निमित्त एक को छोड़ देना चाहिये ग्राम के हेतु कुलका त्याग करना उचित है देश के अर्थ ग्राम का और अपने अर्थ पृथ्वी का अर्थात् सब का त्याग भी उचित है ।

दोहा । एक तजे कुल अर्थ हित ग्राम कुलहु के अर्थ ।
देश अर्थ ग्रामहु तजे, देश आतमा अर्थ ।

षड्दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधं आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥१९॥ हि०

सम्पत्ति के चाहने वाले पुरुष को चाहिए कि. निद्रा तन्द्रा (उत्साह शून्यता) भय क्रोध आलस्य और दीर्घ सूत्रता (काम देर लगाकर करना) इन छ दोषों का त्याग करे ये. छहों दोष कार्य्य के बिगाड़ने के लिये हैं इसमें संदेह नहीं है ।

नहीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
दया मैत्रीच भूतेषु दानञ्च मधुराचवाक् ॥२०॥ शु०

सब प्राणियों में दया और सुहृद्भाव. रखने तथा देने और मधुर बोलने के तुल्य इस त्रिभुवन में कोई भी वशी करण नहीं है ।

येन केनाप्युपायेन यस्य कस्यापि देहिनः ।
संतोषं जनयेद्धर्मा स्तदेवेश्वर पूजनम् ॥२१॥

जो मनुष्य किसी उपाय करके किसी देहधारी के आत्मा को संतोष पहुंचाता है वही पूर्ण रीति से ईश्वर का पूजन करता है ।

कुचैलिनन्दन्तमलोपधारिणं बह्वाशिनन्निष्ठुरभाषिणंच ।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं विमुञ्चतिश्रीर्यदि चक्रपाणिः ॥२२॥ चा

मलिन वस्त्रधारण. करने वाले को, दांतों के मल दूर न करने वाले को,

बहुत भोजन करने वाले को, कटु वचन बोलने वाले को, सूर्य के उदय और अस्त समय में सोने वाले को लक्ष्मी छोड़ देती है चाहे वह विष्णु भी हो।

यस्मिन् कर्मणि सिद्धेऽपि लभ्यते न फलोदयः।
असिद्धेऽपि महद्दुःखं तद्बुधः कथमाचरेत् ॥२३॥

जिस काम के सिद्ध होने पर भी कुछ फल न मिले और असिद्ध होने में महादुःख होवे ऐसे काम को ज्ञानी क्यों करे।

अविसम्वादको दक्षः कृतज्ञो मतिमानृजुः।
अपि संक्षीणकोषोऽपि लभते परिवारणम् ॥२४॥ च०

जो किसी से नहीं डरता है, जिससे और जन भी नहीं डरते वही पुरुष यथार्थ ज्ञानी है और वही मनुष्यों में उत्तम है।

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथा त्यागित्व मेवच ॥२५॥ वि०

विद्या की इच्छा करने वाले को इन सात अवगुणों को छोड़ना चाहिए आलस्य, गर्व, चंचलवृत्ति, बातें, उन्मत्तता, मान, लोभपना।

एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः।
सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम् ॥२६॥ वि०

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्व भूतानां न पुंसां वामलोचनाः ॥२७॥ वि०

ये सात दोष विद्यार्थियों के लिये कहे गये हैं सुख की इच्छा करने वाले को विद्या कहां विद्या की इच्छा करने वाले को सुख कहां इसलिये सुखी को विद्या छोड़नी विद्यावान को सुख छोड़ना अर्थात् सुख और विद्या दोनों साथ नहीं प्राप्त होते।

लकड़ियों से अग्नि की तृप्ति नहीं होती नदियों से समुद्र तृप्त नहीं

होता सब प्राणि मात्र से शत्रु कम नहीं होती पुरुषों से किनारा भी कम नहीं होती ।

पुरुषा बहवो राजन् सततंप्रिय वादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥२८॥ नि०

हे राजन् ! इस संसार में प्रियबोलने वाले पुरुष तो बहुत हैं परन्तु अप्रिय किन्तु हित कहने और सुनने वाले पुरुष दुर्लभ हैं ।

एकैकशोऽविनिघ्नन्ति विषया विषसन्निभाः ।
किं पुनः पञ्च मिलिताः न कथं नाशयन्तिहि ॥२९॥ (शु)

एक एक भी विषय विष के समान मारडालता है जहां पांचों मिलेंहों वहां क्या नहीं करेंगे अर्थात् जहां पांचों हैं वहां तो अवश्य नाश करेंगे ।

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥३०॥ म०

अधर्म करने वाला पहिले वृद्धि पाता है फिर कल्याण को देखता है फिर शत्रुओं को जीतता है पश्चात् मूल सहित नष्ट होजाता है ।

बन्धोहि कोयो विषयानुरागः
कावा विमुक्तिर्विषये विरक्तिः ।
को वाऽस्ति घोरो नरकः स्वदेहः
तृष्णा क्षयः स्वर्ग पदं किमस्ति ॥३१॥

बन्धन क्या है विषयों में प्रीति मुक्ति क्या है विषयों में वैराग्य बड़ा नरक क्या है अपना ही देह स्वर्ग प्राप्ति क्या है ? आशा तृष्णा का त्याग ।

विषयामिषलोभेन मनः प्रेरयतीन्द्रियम् ।
तन्निरुध्यात् प्रयत्नेन जिते तस्मिन् जितेन्द्रियः ॥३२॥ (शु०)

मन विषयरूपी भोग्यपदार्थ के लोभ से इन्द्रियों को चलायमान करदेता

है इसलिये उस को प्रयत्न से रोके उसी के जीते जानेपर मनुष्य जितेन्द्रिय है।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥३३॥

क्रोध से अज्ञान और इससे स्मृति भ्रंश होती है स्मृति भ्रंश होने से बुद्धि नष्ट होजाती है. और बुद्धि के नष्ट होने से यह प्राणी नष्ट होजाता है।

कामाभिभूतः क्रोधाद्वा यो मिथ्या प्रतिपद्यते।

स्वेषु चान्येषु वा तस्य न सहाया भवन्त्युत ॥३४॥ ग०

जो मनुष्य काम वा क्रोध के वश में होकर अपने वा पराये से कपट करता है उस का कोई भी सहायक नहीं होता।

प्रस्ताव सदृशं वाक्यं सद्भाव सदृशं प्रियम्।

आत्म शक्ति समं कोपं यो जानाति सपण्डितः ॥३५॥ (चा)

प्रसंग के अनुसार बोलचाल सच्चे प्रेम से प्यार और अपने शक्ति अनुसार क्रोध को जो जानता है वही पण्डित है।

यथाहि निपुणाः सम्यक् परदोषे क्षणंप्रति।

तथाचे न्निपुणाःस्वेषु कोनमुच्येत् बन्धनात् ॥३६॥ शु०

जैसे यह जीव औरों के दोष खोजने में बडा निपुण है वैसे यदि अपने दोषों के देखने में निपुण होवे तब कौन संसार रूपी बन्धसे से न छूटे अर्थात् सबही छूट सकते हैं।

द्यूतं स्त्री मद्यसेवेतत् वितयं बह्वनर्थकृत्।

अयुक्तं युक्ति युक्तं हि धन पुत्र मति प्रदम् ॥३७॥ शु०

द्यूत, स्त्री, मद्य, येतीन जब अति सेवन किये जावें तो बडे अनर्थ कारी हैं येही तीन युक्ति से सेवन किये जावें तो. धन, पुत्र, विद्या, देने वाले होते हैं अर्थात् थोडे सेवन से जूआ धन को, स्त्री पुत्र को, मद्य विद्या को बढाता है।

संसारहृत्कः श्रुतिजात्मबोधः
को मोक्षहेतुः कथितस्स एव ।
द्वारं किमेकं नरकस्य नारी
स्वर्गप्रदं किं जगतामहिंसा ॥३८॥

संसार छुडानेवाली क्या वस्तु है वेदान्त, मोक्ष का कारण क्या है, आत्मज्ञान, नरक का एक मार्ग क्या है, स्त्री, स्वर्ग देनेवाली वस्तु क्या है, किसी भी प्राणी को हिंसा न करना ।

कोवा दरिद्रोऽति विशाल तृष्णः
श्रीमांश्च को यस्य मनस्तुतुष्टम् ।
जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमो यः
का वा मृतिर्हीनजनं दुराशा ॥३९॥

दरिद्री कौन है जिस को बडी तृष्णा है, धनवान कौन है जिस का मन सन्तुष्ट है, जीनेपर भी मराहुआ कौन है जो उद्यम हीन है, मृत्यु के समान क्या है, नोच मनुष्यों की आशा करना ।

कुसुमस्तबकस्येव द्वेवृत्ती तु मनस्विनः ।
सर्वेषां मूर्ध्निवातिष्ठेद्विशीर्येत वनेऽथवा ॥४०॥ नि०

फूलों के गुच्छों को नाई विद्वान की दो गति हैं याती सब के मस्तक पर रहना या वन में पड़े पड़े बिखरा रहना ।

अत्यभद्राणि भूतानि हीन शक्ति रहन्दरम् ।
स्द्दुं तथापि कुर्व्वीत हानिर्द्वेष फलंयतः ॥४१॥ (वि)

सब लोग विद्या धनादि में कुशली हैं और अपने में कोई पराक्रम नहीं है यह देख किसी की हिंसा नहीं करनी चाहिए परन्तु विनीत हो के चलना उचित है क्योंकि द्वेष से हानि ही होती है ।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥४२॥ नि०

नीतिज्ञ लोग निन्दा करें अथवा स्तुति, लक्ष्मी मनमानी आवे अथवा चली जावे, आज ही मरना होय, अथवा युगान्तर में, परन्तु धीर पुरुष न्याय के मार्ग से पाव विचलित नहीं करते।

गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवंति
तेनिर्गुणं प्राप्य भवंति दोषाः।
आस्वाद्यतोयाः प्रभवन्ति नद्यः
समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः ॥४३॥ (भ)

गुणों के जानने वालों में गुण की प्रशंसा होती है वेही निर्गुणियों में दोष होजाते हैं जैसे नदियां स्वादिष्ट जल वाली होने पर भी समुद्रमें मिलकर अपेय अर्थात् खारो जल होने से पोने के योग्य नहीं रहती हैं।

गुणायन्ते दोषाः सुजन वदने दुर्जन मुखे
गुणा दोषायन्ते किमिति जगतां विस्मय पदम्।
यथाजीमूतोयं लवण जलधेर्वारिमधुरं
फणी पीत्वा क्षीरं वमति गरलं दुःसहतरम् ॥४४॥ (भ०)

श्रेष्ठ पुरुषों के मुख में जाकर दोष भी गुणरूप होजाते हैं और दुर्जनों के मुख में जाकर गुणभी दोष रूप होजाते हैं यह जगत् में आश्चर्य है जैसे मेघ समुद्र के खारी जल को पान करके मधुर जल वरसाते हैं और सर्प दूध को पान करके विस को वरसाता है वैसे ही निंदक शास्त्ररूपी अमृत को पान करके निंदारूपी विष को वरसाते हैं।

दैवे समर्प्य चिरसञ्चितमोहजालं
सुस्थाः सुखं वसत किं परयाचनाभिः।
मेरुं प्रदक्षिणयतोऽपि दिवाकरस्य
ते तस्य सप्त तुरगा न कदाचिदष्टौ ॥४५॥ (शा०)

बहुत दिनों के इकट्ठे किये हुए मोह जालों को दैव को अर्पण करके अर्थात् छोड़ के सुख से आनन्दित होके रहो दूसरे से मांगने से क्या होता है. (देखो मेरु का पहाड़) मेरु के चारोंओर घूमकर भी सूर्य सात हो घोड़े रखते हैं कभी आठ न हुए. अर्थात् याचना करके भी भाग्य से अधिक कुछ नहीं मिलता।

प्रारभ्यते नखलु विघ्न भयेन नीचैः।
प्रारभ्य विघ्न विहिता विरमन्ति मध्याः
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्य मानाः
प्रारभ्य चोत्तम जना न परित्यजन्ति ॥४६॥

विघ्न के डरसे नीच मनुष्य कार्य्य का आरंभ ही नहीं करते. मध्यम जन आरम्भ करके विघ्न को देख कार्य को छोड़देते हैं परन्तु उत्तम जन बारंबार विघ्न होने पर भी कार्य्य का आरम्भ करके परित्याग नहीं करते अर्थात् उस को पूरा ही करके छोड़ते हैं।

यात्यधोऽधो व्रजत्युच्चैर्नरः स्वैरेव कर्मभिः।
कूपस्य खनिता यद्वत् प्राकारस्येव कारकः ॥४७॥

मनुष्य अपने ही किये से उच्चता और नीचता को प्राप्त होता है जैसे दीवार का बनाने वाला क्रमशः ऊपर को ही चढ़जाता है और कूवा खोदने वाला क्रमशः नीचे को ही जाता है।

सुमन्त्रिते सुविक्रान्ते सुकृते सुविचारिते।
सिद्धन्त्यर्थाः महाबाहो दैवं चात्र प्रदक्षिणम् ॥४८॥

भली भांति सोचविचार और आगा पीछा देख कर जो कार्य्य किये जावें

वे सब सिद्ध होते हैं. इस में देवभी सहायक होता है।

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्म वशं सुखम्।

एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुख दुःखयो॥४९॥ (म०)

सब पराये आधीन काम अर्थात् जो अपने वश के नहीं हैं वे दुःख के कारण हैं और सब अपने आधीन कर्म सुखदायी होते हैं. इसी संक्षेप से सुख और दुःख का लक्षण जानना चाहिए।

येषां नविद्या नतपो नदानं

नचापिशीलं नगुणो नधर्मः।

तेमृत्युलोके भुविभार भूता

मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति॥५०॥ भ०

जिनलोगों के नविद्या है न तप है न दान है न शील है न गुण है और न धर्म है. वे इस संसार में पृथ्वी का भार देने वाले होकर मनुष्य के रूपसे मृग फिर रहे हैं

आहारे व्यवहारेच त्यक्तलज्जः सुखीभवत्।

धनं मैत्री करंदाने शत्रु कारणम्॥५१॥ शु०

आहार और व्यवहार में जो मनुष्य लज्जा को छोड़े रहता है. वह सुखी रहता है क्योंकि धन देने के समय तो मैत्री और लेने के समय शत्रुता कराता है।

सदाल्पमनुष्यपकृत महत् साधुषु जायते।

मन्यते सर्षपादल्पं महच्चोपकृतंखलः॥५२॥ शु०

भले जो वों में थोड़ा भी उपकार करना बहुत हो जाता है कपटी मनुष्य बड़े भारी उपकार को सरसों से भी छोटा समझता।

क्षमाशान्ते तथौदार्य्यं कार्पण्यं वहिरेवच ।
उचितं तु व्ययं काले नरः कुर्यान्न चान्यथा ॥५३॥ शु॰

मनुष्य को चाहिए कि मन में तो उदारता और बाहर से कृपणता पर समय के ऊपर यथायोग्य व्यय करे अन्यथा व्यय न करे ।

धीमन्तोऽवन्द्यचरिता मन्यन्ते पौरुषं महत् ।
अशक्ताः पौरुषं कर्त्तुं क्लीबादैवमुपासते ॥५४॥ शु॰

बुद्धिमान् और उदारचित्त वाले पुरुषार्थ को बड़ा मानते हैं आलसी असमर्थ. लोग भाग्य को मानते हैं ।

नित्यं मनोऽपहारिण्या वाचाप्रह्लादयेज्जगत् ।
उद्वेजयति भूतानि क्रूरवाग् धनदोऽपिसन् ॥५५॥ शु॰

मनोहर वाणी से जगत को सदा सन्तुष्ट करे क्योंकि कटु बोलने वाला यदि धन दाता भी हो तौभी लोगों के चित्त को खिन्न करता है ।

अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलोनरः ।
सर्वतः सारमाद्द्यात् पुष्पेभ्य इवषट्पदः ॥५६॥ (शु)

जैसे भ्रमर छोटे बड़े सब फूलों से सार खींच लेता है वैसे ही बुद्धिमान् छोटे वा बड़े सब शास्त्रों से सार ग्रहण करलेता है ।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतकर्मफलं नरैः ।
प्रतीकारैर्विनानैवप्रतीकारे कृते सति ॥५७॥ शु॰

पूर्व जन्म के कर्मों को शान्ति किये विना मनुष्यों को उनका फल अवश्य भोगना पड़ता है पर उनको शान्ति करने पीछे नहीं ।

यत्रस्नेहो भयं तत्र स्नेहो दुःखस्य भाजनम् ।
स्नेह मूलानि दुःखानि तानित्यक्त्वा वसेत्सुखं ॥५८॥ (चा)

जो किसी चीज में प्रीति रखता है उसी को भय होता है. स्नेह ही दुःख

का पाप है और सब प्रकार के दुःखों का मूल भी क्रोध ही है इस कारण उसे छोड़कर सुख से बसै ।

तृणानिभूमिरुदकं वाक् चतुर्थी चसूनृता ।
एतान्यपि सतांगेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥५९॥ (हि)

तृण भूमि जल चौथी मधुर वाणी ये चार वस्तु सत्पुरुषों के घर में कभी नष्ट नहीं होती हैं अर्थात् ये पदार्थ सत्कार के लिये सब के घर में विद्यमान रहते हैं ।

अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः ।
उच्छिद्यंतेक्रियाः सर्वाः ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥६०॥

निर्धन अल्प बुद्धि पुरुष की सब क्रियां बिगड़ती है जैसे ग्रीष्म ऋतु में छोटी नदियां सूखजाती हैं ।

सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात् क्रूरतरः खलः ।
मंत्रौषधिवशः सर्पः खलः केननिवार्यते ॥६१॥

सर्प और खल ये दोनों क्रूर हैं सर्प से खल अधिक तर क्रूर है क्योंकि सर्प मंत्र और औषधि से वश होसकता है खल किससे निवारित होसकता है अर्थात् किसीसे नहीं ।

वित्तम्बन्धुर्वयः कर्म्म विद्याभवति पञ्चमी ।
एतानिमान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥६२॥ म०

द्रव्य, बन्धु, वय, कर्म, विद्या ये पांच मान्य वस्तु हैं इस में पूर्व से उत्तर उत्तर बड़ा है ।

सर्वस्यहि परीक्ष्यन्ते स्वभावानेतरे गुणाः ।
अतीत्यहि गुणान्सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते ॥६३॥ हि०

स्वभावही सब का परीक्षा किया जाता है अन्यगुण नहीं क्योंकि सब गुणों को छोड़ स्वभाव ही सब के ऊपर रहता है ।

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा
यस्तु क्रियावान्पुरुषः स विद्वान् ।
सुचिन्तितं चौषध मातुराणां
न नाम मात्रेण करोत्यरोगम् ॥६४॥ भ०

शास्त्रों को पढकर भी मूर्ख रह जाते हैं शास्त्र के उपदेश के अनुसार जो वर्तते हैं वही विद्वान् हैं क्यों कि रोगियों का नाममात्र से सोचीहुई भी औषध नीरोग नहीं करती ।

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्य्य साधिका ।
तृणैर्गुणत्व मापन्नै र्वध्यन्ते मत्तदन्तिनः ॥६५॥ (हि०)

यदि छोटी छोटी चीज भी इकट्ठी किई जावें तो उनसे बड़ा बड़ा काम होसकता है जैसे बहुत तृणों को इकट्ठा कर रस्सा बनाया जावे तो उससे मस्त हाथी बांधे जाते हैं ।

क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च साधयेत् ।
न त्याज्यौ तु क्षण कणौ नित्यं विद्या धनार्थिना ॥६६॥ शु०

पलपल में विद्या का, दाना दाना करके धन का सग्रह करना चाहिए विद्या के संचय करने वाले को क्षण का और धन के संचय करने वाले को कण का कभी परित्याग नहीं करना चाहिए ।

कः कालः कानि मित्राणि कोदेशः कौव्ययागमौ ।
कस्याहं काचमे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥६७॥ (चा)

कौन समय है कौन मित्र है कौन देश है क्या व्यय और क्या प्राप्ति है मैं कौनहूं मुझ में कितनी सामर्थ्य है इनबातों का विचार मनुष्य हर समय रक्खे ।

पारतन्त्र्यात् परं दुःखं न स्वातन्त्र्यात् परं सुखम् ।
अप्रवासी गृहीनित्यं स्वतन्त्रः सुखमेधते ॥६८॥ शु०

पराधीनता के समान दुःख नहीं है और स्वाधीनता के समान सुख दूसरा

नहीं है जो विदेश में नहो और स्वाधीन हो वही गृहस्थ सदा सुख पाता है।

किं कुलं व्रत हीनस्य करिष्यति दुरात्मनः ।

कृमयः किन्न जायंते कुसुमेषु सुगन्धिषु ॥६९॥

व्रत हीन पुरुष को उत्तम कुल क्या सहायता करेगा क्या सुगन्धि वाले पुष्पों में कीड़े नहीं उत्पन्न होते किंतु होते ही हैं ऐसे ही वह भी एक कीड़ा है।

दातॄणां धार्मिकाणां च शूराणां कीर्त्तनंसदा ।

शृणुयात् तु प्रयत्नेन तच्छिद्रं नैवलक्षयेत् ॥७०॥ शु०

दान शील धर्म शील और वीर पुरुषों की कथा सदा प्रयत्न पूर्वक सुने और उनके दोषों पर दृष्टि न देवे

मातृ पितृ गुरु स्वामि भ्रातृ पुत्र सखिष्वपि ।

न विरुध्ये न्नाप्रिंकुर्यान्मनसापि क्षणं क्वचित् ॥७१॥ शु०

माता पिता गुरु स्वामी भाई पुत्र और मित्रों से कदाचित् क्षणमात्र भी कार्य्य से तो क्या मन से भी विरोध न करे और न उन का अपकार करे।

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् ।

धर्मे स्वीय मनुष्ठानं कस्य चित्तु महात्मनः ॥७२॥

औरों को उपदेश करना तो सब मनुष्यों को सहज है अपने धर्म में आप तत्पर रहना विरलेही महात्मा का काम है।

अनित्यानि शरीराणि विभवोनैव शाश्वतः ।

नित्यं सं निहितो मृत्युः कर्त्तव्योधर्म्म संग्रहः ॥७३॥ हि०

शरीर नाशमान है धन सम्पत्ति भी सदा नहीं रहती मृत्यु सदा शिर पर खड़ी है इस कारण धर्म का संग्रह करना योग्य है।

प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपितेतथा ।
आत्मौपम्येनभूतानां दयां कुर्व्वन्ति साधवः ॥७४॥ हि०

जैसे अपने प्राण अपने को प्रिय लगते हैं वैसेही औरों को भी अपने प्राण प्रिय होते हैं इस भाव से साधुजन सब प्राणियों को अपने ही समान सुख में सुखी तथा दुःख में दुःखी जानकर उनपर दया करते हैं ।

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं चचिन्तयेत् ।
गृहीतइव केशेषुमृत्युना धर्ममाचरेत् ॥७५॥ हि०

ज्ञानी जन अजर (अर्थात् मैं बूढ़ा होने वाला नहीं) अमर (अर्थात मैं मरने वाला नहीं) के समान विद्या संचय करने में तत्पर रहे मृत्यु ने केशों को पकड़लिया है अर्थात् मृत्यु सिर पर खड़ी है ऐसा समझ के धर्म करने में उद्यत होवे ।

यतते नैव कालेऽपि क्रियां कर्तुं चसालसः ।
नसिद्धिस्तस्य कुत्रापि स नश्यति च सान्वयः ॥७६॥ शु०

आलसी मनुष्य समय पर भी कार्य करने में उद्यत नहीं होता उसको कार्य्य में कभी सिद्धि नहीं होती और वह अपने वंश सहित नष्ट होजाता है ।

जलविन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्य्यते घटः ।
सहेतुस्सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्यच ॥७७॥ चा०

एक २ बूंद करके क्रमशः जलसे घड़ा भर जाता है, यही क्रम सब प्रकार की विद्या, धर्म और धन के संचय करने का भी है ।

आकाशमुत्पततु गच्छतु वादिगन्त
मम्भोनिधिं विशतु तिष्ठतु वा यथेष्टम् ।
जन्मान्तरार्जित शुभाशुभ कृन्नराणां
छायेव न त्यजति कर्म्मफलानुबन्धि ॥७८॥ शा

आकाश को उड़जाय चाहे चारों दिशाओं में घूम आवे समुद्र में प्रविष्टहो

जाय चाहे इच्छानुसार जहां चाहे रहे। मनुष्यों को जन्मान्तरों का इकट्ठा किया हुआ शुभा शुभ कर्म्म का फल छाया के समान पीछा नहीं छोड़ता।

कूटेन व्यवहारं तु वृत्तिलोपं नकस्यचित्।
न कुर्य्याच्चिन्तयेत् कस्य मनसाप्यहितं क्वचित् ॥७६॥ शु०

किसी के साथ कपट का व्यवहार न करे और न किसी के जीविका का नाश करे और कभी किसी का मन से भी अहित विचारना नहीं चाहिए :

गुणैरुत्तम तां याति नोच्चैरासनसंस्थितः।
प्रासाद शिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते ॥८०॥ चा०

गुणों से मनुष्य श्रेष्टता को पहुंचते हैं ऊंचे आसन पर बैठने से नहीं क्या कौवा कोठे के ऊपर भाग में बैठकर गरुड़ होजाता है।

परप्रोक्त गुणो यस्तु निर्गुणोपि गुणीभवेत्।
इन्द्रोपि लघुतांयाति स्वयंप्रख्यापितैर्गुणैः ॥८१॥ चा०

जिसकेगुणों को दूसरे लोग बखान करते हैं उस में कुछ भी गुण नहो तौभी गुणवान कहाजाता है इन्द्र भी यदि अपने गुणों को आपही प्रशंसाकरे तो उससे हलकापन होजाता है।

समाने शोभते प्रीती राज्ञि सेवा च शोभते।
वाणिज्यं व्यवहारेषु स्त्री दिव्या शोभते गृहे ॥८२॥ चा०

अपने बराबर जन के साथ प्रीति शोभायमान होती है राजा की सेवा भी शोभती है व्यवहार में बनिये की चाल और घरमें दिव्य स्त्री शोभती है।

मनसाचिन्तितं कार्यं वाचानैव प्रकाशयेत्।
मन्त्रेण रक्षयेद् गूढं कार्य्यं चापि नियोजयेत् ॥८३॥ चा०

मन से सोचेहुये काम को वचन से प्रकाश न करे किंतु मन ही मन में उसकी रक्षा करे और गुप्तही उस कार्य को काम में भी लावे।

परोक्षे कार्य्य हन्तारं प्रत्यक्षे प्रिय वादिनम् ।
वर्ज्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयो मुखम् ॥८४॥ चा०

मुंह के सामने मोठो२ बातें बनाकर कहनेवाला और पोठ पोछे काम बिगाड़ने वाला ऐसे मित्र को भी ऊपर तो दूध से और भीतर विषसे भरे घड़े के समान ही त्याग देना चाहिए ।

न भूषयत्यलङ्कारो न राज्यं न च पौरुषम् ।
न विद्या न धनं तादृग् या दृक् सौजन्य भूषणम् ॥८५॥ शु०

जैसा भूषण सज्जनता है वैसा गहना, राज्य, पराक्रम, विद्या और धन कोई भी नहीं है अर्थात् सौजन्य के बराबर यह सब कोई मनुष्य को भूषित नहीं करते ।

दशमोऽध्याय:

धर्म्मसोपान

ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्ज्जुनतिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानिमायया ॥१॥ गी०

हे अर्ज्जुन ! ईश्वर सबप्राणियोंके हृदयमें स्थितहै और समस्त प्राणियों को मानो यन्त्रमें चढ़ायके मायाके द्वारा घुमाताजाता है अर्थात् जैसे मदारी कठपुतलियों को तारमें चढ़ाकर नचाताहै. वैसेही. ईश्वर भी मायाके द्वारा समस्त प्राणियोंको नचाताजाताहै ।

मन्यन्ते वै पाप कृतो नकश्चित् पश्यतीतिन: ।
तांस्तुदेवा: प्रपश्यन्ति स्वस्यै वान्तर पूरुष: ॥२॥ म०

पाप करने वाले मनुष्य यह समझते हैं कि अधर्म करने में हम को कोई नहीं देखता है परन्तु उनको देवता अर्थात् इन्द्रियों के अधिष्ठाता देव और

अपने ही अन्त: करण में वर्त्तमान पुरुष सदा देखते रहते हैं।

शुभाशुभफलंकर्म मनो वाग्देह संभवम्।

कर्मजागतयो नृणामुत्तमाधममध्यमा: ॥३॥ म०

मन वाणी और देह से उत्पन्न हुए कर्मों का फल उनके अनुसार शुभ अथवा अशुभ होता है ऐसे ही इनकर्मों से जो गति उनके करने हारों की होती है वह भी तीन प्रकार की है अर्थात् उत्तम, मध्यम और अधम।

अधर्म प्रभवं चैव दु:ख योगं शरीरिणाम्।

धर्मार्थ प्रभवं चैव सुख संयोग मक्षयम् ॥४॥ म०

अधर्म करने से मनुष्यों को उसका दु:ख रूप फल प्राप्त होता है, अक्षय जो सुख है वह केवल धर्म के करने से ही प्राप्त होता है॥

एता दृष्ट्वाऽस्य जीवस्य गतिः स्वेनैव चेतसा।

धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मन: ॥५॥ म०

धर्म और अधर्म से उत्पन्न हुई जीव की गतियों को देखकर अर्थात् स्वर्ग और नर्क, भले और बुरे कर्मों ही से मिलते हैं यह बुद्धि से जानकर सदा धर्म ही में चित्त लगाना चाहिए।

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम्।

तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् द्वितीयं नसमाचरेत ॥६॥ म०

ज्ञान पूर्वक अथवा प्रमाद से जब कोई निन्दित कर्म होजाय और यदि करने हारा उस से छुटकारा चाहै तो दूसरी बार उस कर्म को कदापि न करें।

कृत्वापापं हि सं तप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते।

नैवं कुर्यात्पुनरिति निवृत्त्या पूयते तुस: ॥७॥ म०

मनुष्य पाप को करके फिर उस पाप का सच्चा सन्ताप करे अर्थात् मैंने यह अनुचित कर्म किया और मै फिर कभी ऐसा न करूंगा तो वह उस से छूट जाता है।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्म्मस्वनुषज्जते ।
सर्व्वसङ्कल्पसन्न्यासी योगारूढ़ स्तदोच्यते ॥८॥ गी०

अपने से अपना उद्धार करना चाहिए अपने को नीचे न गिराना चाहिए क्योंकि आत्मा ही आत्मा का मित्र है अर्थात् संसार समुद्र तरने का हेतु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है अर्थात् संसार के दुःख में डुबाने का हेतु है ।

नामुत्रहि सहायार्थं पितामातच तिष्ठतः ।
न पुत्रदारा न ज्ञाति धर्मं स्तिष्ठति केवलम् ॥९॥ म०

परलोक में सहायता देने के लिये माता पिता पुत्र स्त्री बान्धव इनमें से कोई भी समर्थ नहीं है केवल धर्म ही अपने साथ जाता है और सहायता के लिये प्रस्तुत रहता है ।

सत्य मेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येना क्रमन्त्यृ षयो ह्याप्त कामा यत्र तत्सत्यस्य
परमंनिधानम् ॥१०॥ मु०

सत्य ही की सदा जय होती है, मिथ्या की नहीं, सत्य से ही देवयान नामक मार्ग अर्थात् उत्तम लोकों को पहुचाने वाला मार्ग बना हुआ है इस ही सत्य की सीढ़ी से मुनि लोग उस परमधाम को चढ़ गये है जहां सत्य का अन्तिम विश्राम अर्थात् ठहरने का स्थान है ।

सत्यं वद धर्म्मञ्चर स्वाध्यायान्मा प्रमदः ।
सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्म्मान्न प्रमदितव्यम्
कुशलान्न प्रमदितव्यम् ॥११॥ तै०

सचबोलो, धर्म के आचरण करो, अच्छे शास्त्रों के पढने में प्रमाद मत करो, सत्यसे प्रमाद मत करो, धर्म से प्रमाद मत करो, शुभकर्मों से प्रमाद मत करो, ।

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य्यदेवो भव, ।
अतिथिदेवो भव, मान्यस्माकं सुचरितानि तानि
त्वयोपास्यानि नो इतराणि । ॥१२॥ तै०

माता को देवता की नाईं मानो, पिता को देवता की नाईं मानो, आचार्य्य को देवता की नाईं मानो, अतिथि को देवता की नाईं सत्कार करो, हमारे जो अच्छे आचरण हैं उन्हीं का तुमभी अनुसरण करो, जो अच्छे आचरण नहीं है उनका अनुसरण मत करो ।

श्रद्धयादेयम् । अश्रद्धयाऽदेयम् ॥१३॥ तै०

श्रद्धासे दान करो, विना श्रद्धा दान मत करो ।

ईशावास्यमिदं सर्व्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्वित् धनम् ॥१४॥ ई०

जगत में जो कुछ यह सब है ईश्वर के द्वारा आच्छादित है, (अथवा उस के मङ्गल भावों से व्याप्त है।,) (कामना को) त्याग करके (अथवा उस का दिया हुआ भोग करो परन्तु स्वार्थ परता को त्याग करके, किसी के धन को आकांक्षा मत करो अर्थात् पराई वस्तु में लोभ मत करो ।

एष आदेशः एष उपदेशः ।
एषा वेदोपनिषत्, एतदनुशासनम् ॥१५॥ तै०

यही आदेश, और यही उपदेश है, यही वेद का परम ज्ञान है, यही शास्त्र है, इसी प्रकार से (ब्रह्मकी) उपासना करनी चाहिये।

समाप्त